सन्दर्भः बिहार बाढ़

तैरने वाला समाज डूब रहा है

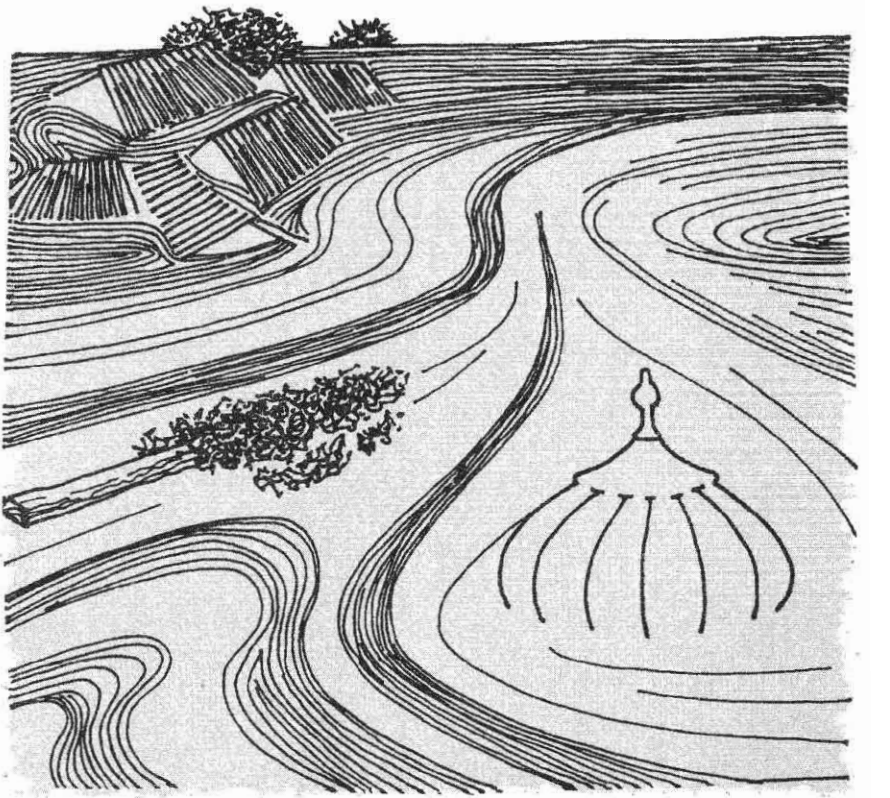

अनुपम मिश्र

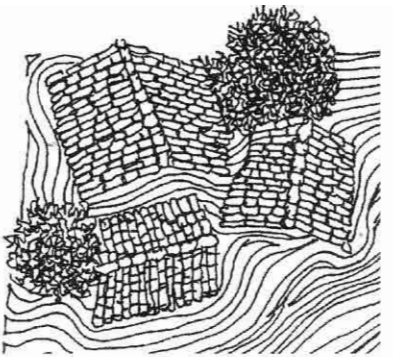

छोटे से लेकर बड़े बांध, बड़े-बड़े तटबंध इस इलाके में बनाए गए हैं, बगैर इन नदियों का स्वभाव समझे। नदियों की धारा इधर से उधर न भटके – यह मान कर हमने एक नए भटकाव के विकास की योजना अपनाई है। उसको तटबंध कहते हैं। ये बांग्लादेश में भी बने हैं और इनकी लंबाई सैकड़ों मील तक जाती है।

आज पता चलता है कि इनसे बाढ़ रुकने के बजाय बढ़ी है, नुकसान ही ज्यादा हुआ है। अभी तो कहीं-कहीं ये एकमात्र उपकार यह करते हैं कि एक बड़े इलाके की आबादी जब डूब से प्रभावित होती है, बाढ़ से प्रभावित होती है तो लोग इन तटबंधों पर ही शरण लेने आ जाते हैं।

उत्तर बिहार में आई भयानक बाढ़ अब आगे निकल गई है। कुछ लोग उसे भूल भी जाएंगे। लेकिन याद रखना चाहिए कि उत्तर बिहार उस बाढ़ की मंज़िल नहीं था। वह एक पड़ाव भर था। बाढ़ की शुरुआत नेपाल से होती है, फिर वह उत्तर बिहार आती है। उसके बाद बंगाल जाती है। और सबसे अंत में सितंबर के अंत या अक्टूबर के प्रारंभ में वह बांग्लादेश में अपनी आखिरी उपस्थिति जताते हुए सागर में मिलती है।

इस बार उत्तर बिहार में बाढ़ ने बहुत अधिक तबाही मचाई। कुछ दिन सभी का ध्यान इसकी तरफ गया। जैसा कि अक्सर होता है, हेलिकॉप्टर आदि से दौरे हुए। फिर अगली बाढ़ तक इसे भुला दिया जाता है। भूल नहीं पाते हैं वे लाखों लोग जो बाढ़ में अपना सब कुछ खो बैठते हैं। इन्हें अपना जीवन फिर लगभग शून्य से शुरू करना पड़ता है।

बाढ़ अतिथि नहीं है। यह कभी अचानक नहीं आती। दो-चार दिन का अंतर पड़ जाए तो बात अलग है। इसके आने की तिथियां बिल्कुल तय हैं। लेकिन जब बाढ़ आती है तो हम कुछ ऐसा व्यवहार करते हैं कि यह अचानक आई विपत्ति है। इसके पहले जो तैयारियां करनी चाहिए, वे बिल्कुल नहीं हो पाती हैं।

बाढ़ अतिथि नहीं है। यह कभी अचानक नहीं आती। दो-चार दिन का अंतर पड़ जाए तो बात अलग है। इसके आने की तिथियां बिल्कुल तय हैं। लेकिन जब बाढ़ आती है तो हम कुछ ऐसा व्यवहार करते हैं कि यह अचानक आई विपत्ति है। इसके पहले जो तैयारियां करनी चाहिए, वे बिल्कुल नहीं हो पाती हैं। इसलिए अब बाढ़ की मारक क्षमता पहले से अधिक बढ़ चली है। पहले शायद हमारा समाज बिना इतने बड़े प्रशासन के या बिना इतने बड़े निकम्मे प्रशासन के अपना इंतजाम बखूबी करना जानता था। इसलिए बाढ़ आने पर वह इतना परेशान नहीं दिखता था।

इस बार की बाढ़ ने उत्तर बिहार को कुछ अभिशप्त इलाके की तरह छोड़ दिया है। सभी जगह बाढ़ से निपटने में अव्यवस्था की चर्चा हुई है। अव्यवस्था के कई कारण भी गिनाए गए हैं – वहां की असहाय गरीबी आदि। लेकिन बहुत कम लोगों को इस बात का अंदाज़ होगा कि उत्तर बिहार एक बहुत ही संपन्न टुकड़ा रहा है इस प्रदेश का। मुजफ्फरपुर की लीचियां, पूसा ढोली की ईख, दरभंगा का शाहबसंत धान, शकरकंद, आम, चीनिया केला और बादाम और यहीं के कुछ इलाकों में पैदा होने वाली तंबाकू, जो पूरे शरीर की नसों को हिलाकर रख देती है। सिलोत क्षेत्र का पतले-से-पतला चूड़ा, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह नाक की हवा से उड़ जाता है, उसके स्वाद की चर्चा तो अलग ही है। वहां धान की ऐसी भी किस्में रही हैं जो बाढ़ के पानी के साथ-साथ खेलती हुई ऊपर उठती जाती थीं और फिर बाढ़ को विदा कर खलिहान में आती थीं। फिर दियारा के संपन्न खेत।

सुधी पाठक इस सूची को न जाने कितना बढ़ा सकते हैं। इसमें पटसन और नील भी जोड़ लें तो आप 'दुनिया के सबसे बड़े' यानी लंबे प्लेटफॉर्म पर अपने आप को खड़ा पाएंगे। सोनपुर का प्लेटफॉर्म। ऐसा कहते हैं कि यह हमारे देश का सबसे बड़ा प्लेटफॉर्म रहा है। यह वहां की संपन्नतम चीजों को रेल से ढोकर देश के भीतर और बाहर ले जाने के लिए बनाया गया था। एक पूरा संपन्न इलाका उत्तर बिहार आज दयनीय स्थिति में क्यों पड़ गया है? हमें सोचना चाहिए। आज हम इस इलाके की कोई चिंता नहीं कर रहे हैं और उसे एक तरह से लाचारी में छोड़ बैठे हैं।

बाढ़ आने पर सबसे पहला दोष तो हम नेपाल को देते हैं। नेपाल एक छोटा-सा देश है। बाढ़ के लिए हम उसे कब तक दोषी ठहराते रहेंगे? कहा जाता है कि नेपाल ने पानी छोड़ा, इसलिए उत्तर बिहार बह गया। यह देखने लायक बात होगी कि नेपाल कितना पानी छोड़ता है। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि नेपाल बाढ़ का पहला हिस्सा है। वहां हिमालय की ऊंची चोटियों पर जो पानी गिरता है, उसे रोकने की उसके पास कोई क्षमता और साधन नहीं है। और शायद उसे रोकने की कोई व्यावहारिक

जरूरत भी नहीं है। रोकने से खतरे और भी बढ़ सकते हैं। इसलिए नेपाल पर दोष थोपना बंद करना होगा।

यदि नेपाल पानी रोकेगा तो आज नहीं तो कल, हमें अभी की बाढ़ से भी भयंकर बाढ़ को झेलने की तैयारी करके रखनी पड़ेगी। हम सब जानते हैं कि हिमालय का यह हिस्सा कच्चा है और इसमें कितनी भी सावधानी और ईमानदारी से बनाए गए बांध किसी-न-किसी तरह से प्रकृति की किसी छोटी-सी हलचल से टूट भी सकते हैं। और तब आज से कई गुना भयंकर बाढ़ हमारे सामने आ सकती है। यदि नेपाल को ही दोषी ठहराया जाए तो कम-से-कम बिहार के बाढ़ नियंत्रण का एक बड़ा भाग – पैसों का, इंजीनियरों का, नेताओं का अप्रैल और मई में नेपाल जाना चाहिए ताकि वहां यहां की बाढ़ से निपटने के लिए पुख्ता इंतजामों के बारे में बातचीत की जा सके। बातचीत मित्रवत हो, तकनीकी तौर पर हो और जरूरत पड़े तो फिर मई में ही प्रधानमंत्री नहीं तो प्रदेश के मुख्यमंत्री ही नेपाल जाएं और आगामी जुलाई अगस्त या सितंबर में आने वाली बाढ़ के बारे में चर्चा करके देखें।

इसलिए इन नदियों की पानी की क्षमता, उनका वेग, उनके साथ कच्चे हिमालय से, शिवालिक से आने वाली मिट्टी और गाद इतनी अधिक होती है कि उसकी तुलना पश्चिमी हिमालय और उत्तर-पूर्वी हिमालय से नहीं कर सकते।

हमें भूलना नहीं चाहिए कि हम बाढ़ के रास्ते में हैं। उत्तर बिहार से पहले नेपाल में भी काफी लोगों को बाढ़ के कारण जान से हाथ धोना पड़ता है। पिछले साल नेपाल में भयंकर भूस्खलन हुए थे, और तब हमें पता चल जाना चाहिए था कि अगले साल हम पर भी बड़ा संकट आएगा, क्योंकि हिमालय के इस कच्चे भाग में जितने भूस्खलन हुए, उन सबका मलबा वहीं का वहीं पड़ा था और वह इस वर्ष की बरसात में नीचे उतर आने वाला था।

उत्तर बिहार की परिस्थिति भी अलग से समझने लायक है। यहां पर हिमालय से अनगिनत नदियां सीधे उतरती हैं और उनके उतरने का एक

ही सरल उदाहरण दिया जा सकता है : जैसे पाठशाला में टीन की फिसलपट्टी होती है, उसी तरह से ये नदियां हिमालय से बर्फ की फिसलपट्टी से धड़ाधड़ नीचे उतरती हैं। हिमालय के इसी क्षेत्र में नेपाल के हिस्से में सबसे ऊंची चोटियां हैं और कम दूरी तय करके ये नदियां उत्तर भारत में नीचे उतरती हैं। इसलिए इन नदियों की पानी की क्षमता, उनका वेग, उनके साथ कच्चे हिमालय से, शिवालिक से आने वाली मिट्टी और गाद, साद इतनी अधिक होती है कि उसकी तुलना पश्चिमी हिमालय और उत्तर-पूर्वी हिमालय से नहीं कर सकते।

एक तो वह सबसे ऊंचा क्षेत्र है, कच्चा भी है, फिर भ्रंश पर टिका हुआ इलाका है। यहां भौगोलिक परिस्थितियां ऐसी हैं जहां से हिमालय का जन्म हुआ है। बहुत कम लोगों को अंदाज़ होगा कि हमारा समाज भी भू-विज्ञान को, 'जिओ मार्फालॉजी' को, खूब अच्छी तरह समझता है। इसी इलाके में ग्यारहवीं शताब्दी में बना वराह अवतार का मंदिर भी है। भगवान के वराह रूप के मंदिर किसी और इलाके में आसानी से मिलते नहीं हैं। यह हिस्सा कुछ करोड़ साल पहले किसी एक घटना के कारण हिमालय के रूप में सामने आया। यहीं से फिर नदियों का जाल बिछा। ये सरपट दौड़ती हुई आती हैं – सीधी उतरती हैं। इससे उनकी ताकत और बढ़ जाती है।

वह इस प्रकृति से लड़ लेगा, उसे जीत लेगा, ऐसा घमंड नहीं किया। वह उसकी गोद में कैसे रह सकता है - इसका उसने अभ्यास करके रखा था। क्षणभंगुर समाज ने करोड़ वर्षों की इस लीला में अपने को प्रौढ़ बना लिया और फिर अपनी प्रौढ़ता को हिमालय के लड़कपन की गोद में डाल दिया था।

जब हिमालय बना, तब कहते हैं कि उसके तीन पुड़े थे। तीन तहें थीं। जैसे मध्यप्रदेश के हिस्से में सतपुड़ा है, वैसे यहां तीन पुड़े थे-आंतरिक, मध्य और बाह्य। बाह्य हिस्सा शिवालिक सबसे कमजोर माना जाता है। वैसे भी भूगोल की परिभाषा में हिमालय के लिए कहा जाता है कि यह अरावली, विंध्य और सतपुड़ा के मुकाबले बच्चा है। महीनों के बारह पन्ने पलटने से हमारे सभी तरह के कैलेंडर दीवार पर से उतर जाते हैं। लेकिन प्रकृति के कैलेंडर में लाखों वर्ष का

एक पन्ना होता है। उस कैलेंडर से देखें तो शायद अरावली की उम्र नब्बे वर्ष होगी और हिमालय? अभी चार-पांच बरस का शैतान बच्चा है। वह अभी उछलता-कूदता है, खेलता-डोलता है। टूट-फूट उसमें बहुत होती रहती है। अभी उसमें प्रौढ़ता या वयस्क वाला संयम नहीं है। शांत, धीरज जैसे गुण नहीं आए हैं। इसलिए हिमालय की ये नदियां सिर्फ पानी नहीं बहाती हैं, वे साद, मिट्टी, पत्थर और बड़ी-बड़ी चट्टानें भी साथ लाती हैं। उत्तर बिहार का समाज अपनी स्मृति में इन बातों को दर्ज कर चुका था।

एक तो चंचल बच्चा हिमालय, फिर कच्चा और तिस पर भूकंप वाला क्षेत्र भी – क्या कसर बाकी रह गई है? हिमालय के इसी क्षेत्र से भूकंप की एक बड़ी और प्रमुख पट्टी गुजरती है। दूसरी पट्टी इस पट्टी से थोड़े ऊपर के भाग में मध्य हिमालय में आती है। सारा भाग लाखों बरस पहले के अस्थिर मलबे के ढेर से बना है और फिर भूकंप इसे जब चाहे और अस्थिर बना देते हैं। भू-विज्ञान बताता है कि इस उत्तर बिहार में और नेपाल के क्षेत्र में धरती में समुद्र की तरह लहरें उठी थीं और फिर वे एक-दूसरे से टकरा कर ऊपर-ही-ऊपर उठती चली गईं। और फिर कुछ समय के लिए स्थिर हो गईं। यह 'स्थिरता' तांडव नृत्य की तरह है। आधुनिक विज्ञान की भाषा में लाखों वर्ष पहले 'मियोसिन' काल में घटी इस घटना को उत्तरी बिहार के समाज ने अपनी स्मृति में वराह अवतार के रूप में जमा किया है। जिस डूबती पृथ्वी को वराह ने अपने थूथनों से ऊपर उठाया था, वह आज भी कभी भी कांप जाती है। 1934 में जो भूंकप आया था, उसे अभी भी लोग भूले नहीं हैं।

समाज ने पीढ़ियों से शताब्दियों से, यहां फिसलगुंडी की तरह फुर्ती से उतरने वाली नदियों के साथ जीवन जीने की कला सीखी थी, बाढ़ के साथ बढ़ने की कला सीखी थी। उसने और उसकी फसलों ने बाढ़ में डूबने के बदले तैरने की कला सीखी थी। वह कला आज धीरे-धीरे मिटती जा रही है।

लेकिन यहां के समाज ने इन सब परिस्थितियों को अपनी जीवन शैली में, जीवन दर्शन में धीरे-धीरे आत्मसात किया था। प्रकृति के इस

विराट रूप में वह एक छोटी-सी बूंद की तरह शामिल हुआ। उसमें कोई घमंड नहीं था। वह इस प्रकृति से लड़ लेगा, उसे जीत लेगा, ऐसा घमंड नहीं किया। वह उसकी गोद में कैसे रह सकता है - इसका उसने अभ्यास करके रखा था। क्षणभंगुर समाज ने करोड़ वर्षों की इस लीला में अपने को प्रौढ़ बना लिया और फिर अपनी प्रौढ़ता को हिमालय के लड़कपन की गोद में डाल दिया था।

लेकिन पिछले सौ-डेढ़-सौ साल में हमारे समाज ने ऐसी बहुत सारी चीजें की हैं, जिनसे उसका विनम्र स्वभाव बदला है और उसके मन में थोड़ा घमंड भी आया है। समाज के मन में न सही तो उसके नेताओं के, योजनाकारों के मन में, अधिकारियों, इंजीनियरों के मन में यह घमंड आया है। समाज ने पीढ़ियों से, शताब्दियों से यहां फिसलगुंडी की तरह फुर्ती से उतरने वाली नदियों के साथ जीवन जीने की कला सीखी थी, बाढ़ के साथ बढ़ने की कला सीखी थी। उसने और उसकी फसलों ने बाढ़ में डूबने के बदले तैरने की कला सीखी थी। वह कला आज धीरे-धीरे मिटती जा रही है।

उत्तर बिहार में हिमालय से उतरने वाली नदियों की संख्या अनगिनत है। कोई गिनती नहीं है, फिर भी कुछ लोगों ने उनकी गिनती की है। आज लोग यह मानते हैं कि यहां पर इन नदियों ने दुख के अलावा कुछ नहीं दिया है। पर इनके नाम देखेंगे तो इनमें से किसी भी नदी के नाम में, विशेषण में दुख का कोई पर्यायवाची देखने को नहीं मिलेगा। लोगों ने नदियों को हमेशा की तरह देवियों के रूप में देखा है। हम उनके विशेषण दूसरी तरह से देखें तो उनमें आपको बहुत तरह-तरह के ऐसे शब्द मिलेंगे जो उस समाज और नदियों के रिश्ते को बताते हैं। कुछ नाम संस्कृत से होंगे। कुछ गुणों पर होंगे और एकाध अवगुणों पर भी हो सकते हैं।

इन नदियों के विशेषणों में सबसे अधिक संख्या है- आभूषणों की। और ये आभूषण हंसुली, अंगूठी और चंद्रहार जैसे गहनों के नाम पर हैं। हम सभी जानते हैं कि ये आभूषण गोल आकार के होते हैं – यानी यहां पर नदियां उतरते समय इधर-उधर सीधी बहने के बदले आड़ी-तिरछी, गोल आकार में क्षेत्र को बांधती हैं – गांवों को लपेटती हैं और उन गांवों

का आभूषणों की तरह शृंगार करती हैं। उत्तर बिहार के कई गांव इन 'आभूषणों' से ऐसे सजे हुए थे कि बिना पैर धोए आप इन गांवों में प्रवेश नहीं कर सकते थे। इनमें रहने वाले आपको गर्व से बताएंगे कि हमारे गांव की पवित्र धूल गांव से बाहर नहीं जा सकती, और आप हमारे गांव में शहर से अपनी (शायद अपवित्र) धूल गांव में ला नहीं सकते। कहीं-कहीं बहुत व्यावहारिक नाम भी मिलेंगे। एक नदी का नाम गोमूत्रिका है – जैसे कोई गाय चलते-चलते पेशाब करती है तो जमीन पर आड़े-तिरछे निशान पड़ जाते हैं। इतनी आड़ी-तिरछी बहने वाली यह नदी है। इसमें एक-एक नदी का स्वभाव देखकर लोगों ने इन नदियों को अपनी स्मृति में रखा है।

एक तो इन नदियों का स्वभाव और ऊपर से पानी के साथ आने वाली साद के कारण ये अपना रास्ता बदलती रहती हैं। कोसी के बारे में कहा जाता है कि इसने पिछले कुछ सौ साल में 148 किलोमीटर के क्षेत्र में अपनी धारा बदली है। उत्तर बिहार के दो जिलों की इंच भर जमीन भी कोसी ने नहीं छोड़ी है, जहां से वह बही न हो। ऐसी नदियों को हम किसी तरह के तटबंध या बांध से बांध सकते हैं, यह कल्पना भी करना अपने आप में विचित्र है। समाज ने इन नदियों को अभिशाप की तरह नहीं देखा। उसने इनके वरदान को कृतज्ञता से स्वीकार दिया। उसने यह माना कि इन नदियों ने हिमालय की कीमती मिट्टी इस क्षेत्र के दलदल में पटक कर बहुत बड़ी मात्रा में खेती योग्य जमीन निकाली है। इसलिए वह इन नदियों को बहुत आदर के साथ देखता रहा है। कहा जाता है कि पूरा-का-पूरा दरभंगा खेती योग्य हो सका तो इन्हीं नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी के कारण ही। लेकिन इनमें भी समाज ने उन नदियों को छांटा है, जो अपेक्षाकृत कम साद वाले इलाके से आती हैं।

ऐसी नदियों में एक है - खिरोदी। कहा जाता है कि इसका नामकरण क्षीर अर्थात दूध से हुआ है, क्योंकि इसमें साफ पानी बहता है। एक नदी जीवछ है, जो शायद जीवात्मा या जीव इच्छा से बनी होगी। सोनबरसा भी है। इन नदियों के नामों में गुणों का वर्णन देखेंगे तो किसी में भी बाढ़ से लाचारी की झलक नहीं मिलेगी। कई जगह लालित्य है इन

नदियों के स्वभाव में। सुंदर कहानी है मैथिली के कवि विद्यापति की।

कवि जब अस्वस्थ हो गए तो उन्होंने अपने प्राण नदी में ही छोड़ने का प्रण किया। कवि प्राण छोड़ने नदी की तरफ चल पड़े, मगर बहुत अस्वस्थ होने के कारण नदी किनारे तक नहीं पहुंच सके। कुछ दूरी पर ही रह गए तो उन्होंने नदी से प्रार्थना की कि हे मां, मेरे साहित्य में कोई शक्ति हो, मेरे कुछ पुण्य हों तो मुझे ले जाओ। कहते हैं कि नदी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अपना रास्ता बदल कर कवि तक आई और कवि को बहा ले गई।

नदियां विहार करती हैं, उत्तर बिहार में। वे खेलती हैं, कूदती हैं। यह सारी जगह उनकी है, यह है उनका आंगन। इसलिए वे कहीं भी जाएं, उसे जगह बदलना नहीं माना जाता था। उत्तर बिहार में समाज का एक दर्पण साहित्य रहा होगा तो दूसरा तरल दर्पण नदियां थीं। इन असंख्य नदियों में वहां का समाज अपना चेहरा देखता था और नदियों के चंचल स्वभाव को बड़े शांत भाव से अपनी देह में, अपने मन और अपने विचारों में उतारता था। इसलिए कभी वहां कवि विद्यापति जैसे सुंदर किस्से बनते तो कभी फुलपरास जैसी घटनाएं रेत में उकेरी जातीं। नदियों की लहरें रेत में लिखी इन घटनाओं को मिटाती नहीं थीं – हर लहर इन्हें पक्के शिलालेखों में बदलती थी। ये शिलालेख इतिहास में मिलें न मिलें, लोगों के मन में, लोक स्मृति में मिलते थे। फुलपरास का किस्सा यहां दोहराने लायक है।

यहां की नदियां कवि के कहने से भी रास्ता बदल लेती हैं और साधारण लोगों के आग्रह को स्वीकार कर अपना बदला हुआ रास्ता फिर से सुधार लेती हैं। इसलिए इन नदियों के स्वभाव को ध्यान में रख कर जीवन चलाओ।

कभी भुतही नदी फुलपरास नाम के एक स्थान से रास्ता बदल कर कहीं और 'भटक' गई। तब वहां के गांवों ने भुतही को वापस बुलाने के लिए अनुष्ठान किया गया। नदी ने मनुहार स्वीकार की और अगले वर्ष वापस चली आई! ये कहानियां समाज इसलिए याद रखवाना चाहता है

कि लोगों को मालूम रहे कि यहां की नदियां कवि के कहने से भी रास्ता बदल लेती हैं और साधारण लोगों के आग्रह को स्वीकार कर अपना बदला हुआ रास्ता फिर से सुधार लेती हैं। इसलिए इन नदियों के स्वभाव को ध्यान में रख कर जीवन चलाओ। ये चीज़ें हम लोगों को इस तरफ ले जाती हैं कि जिन बातों को भूल गए हैं, उन्हें फिर से याद करें।

कुछ नदियों के बहुत विचित्र नाम भी समाज ने हज़ारों साल के अनुभव से रखे थे। इनमें से एक विचित्र नाम है- अमरबेल। कहीं इसे आकाशबेल भी कहते हैं। इस नदी का उद्भव और संगम कहीं नहीं दिखाई देता है। कहां से निकलती है, किस नदी में मिलती है – ऐसी कोई पक्की जानकारी नहीं है। बरसात के दिनों में अचानक प्रकट होती है और जैसे पेड़ पर अमरबेल छा जाती है। वैसे ही एक बड़े इलाके में इसकी कई धाराएं दिखाई देती हैं। फिर ये गायब भी हो जाती हैं। यह भी जरूरी नहीं कि वह अगले साल इन्हीं धाराओं में से बहे। तब यह अपना कोई दूसरा नया जाल खोल लेती है। एक नदी का नाम है दस्यु नदी। यह दस्यु की तरह दूसरी नदियों की 'कमाई' हुई जलराशि का, उनके वैभव का हरण कर लेती है। इसलिए पुराने साहित्य में इसका एक विशेषण वैभवहरण भी मिलता है।

फिर बिल्कुल चालू बोलियों में भी नदियों के नाम मिलते हैं। एक नदी का नाम मरने है। इसी तरह एक नदी मरगंगा है। भुतहा या भुतही का किस्सा तो ऊपर आ ही गया है। जहां ढेर सारी नदियां हर कभी हर कहीं से बहती हों सारे नियम तोड़ कर, वहां समाज ने एक ऐसी भी नदी खोज ली थी जो टस से मस नहीं होती थी। उसका नाम रखा गया-धर्ममूला। ये सब किस्से, नाम बताते हैं कि नदियां वहां जीवंत भी हैं और कभी-कभी वे गायब भी हो जाती हैं, भूत भी बन

जहां ढेर सारी नदियां हर कभी हर कहीं से बहती हों, सारे नियम तोड़ कर, वहां समाज ने एक ऐसी भी नदी खोज ली थी जो टस से मस नहीं होती थी। उसका नाम रखा गया- धर्ममूला। अनगिनत चंचल नदियों वाले इस क्षेत्र में एक धर्ममूला ही ऐसी नदी थी, जो गंभीर थी, अपना रास्ता नहीं बदलती थी। अपनी लीक नहीं छोड़ती थी।

जाती हैं, मर भी जाती हैं। यह सब इसलिए होता है कि ऊपर से आने वाली साद उनमें भरान और धसान की दो गतिविधियां इतनी तेजी से चलाती हैं कि उनके रूप हर बार बदलते जाते हैं।

बहुत छोटी-छोटी नदियों के वर्णन में ऐसा मिलता है कि इनमें ऐसी भंवर उठती हैं कि हाथियों को भी डुबो दें। इनमें चट्टानें और पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े आते हैं और जब वे आपस में टकराते हैं तो ऐसी आवाज आती है कि दिशाएं बहरी हो जाएं! ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि कुछ नदियों में बरसात के दिनों में मगरमच्छों का आना इतना अधिक हो जाता है कि उनके सिर या थूथने गोबर के कंडे की तरह तैरते हुए दिखाई देते हैं। ये नदियां एक-दूसरे से बहुत मिलती हैं, एक-दूसरे का पानी लेती हैं और देती भी हैं। इस आदान-प्रदान में जो खेल होता है, उसे हमने एक हद तक अब बाढ़ में बदल दिया है। नहीं तो यहां के लोग इस खेल को दूसरे ढंग से देखते थे। वे बाढ़ की प्रतीक्षा करते थे।

इन्हीं नदियों की बाढ़ के पानी को रोक कर समाज बड़े-बड़े तालाबों में डालता था और इससे इनकी बाढ़ का वेग कम करता था। एक पुराना पद मिलता है- 'चार कोसी झाड़ी।' इसके बारे में नए लोगों को अब ज्यादा कुछ पता नहीं है। पुराने लोगों से ऐसी जानकारी एकत्र कर यहां के इलाके का स्वभाव समझना चाहिए। चार कोसी झाड़ी का कुछ हिस्सा शायद चंपारण में बचा है। ऐसा कहते हैं कि पूरे हिमालय की तराई में चार कोस की चौड़ाई का एक घना जंगल बचा कर रखा गया था। इसकी लंबाई पूरे बिहार में ग्यारह-बारह सौ किलोमीटर तक चलती थी। यह पूर्वी उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र तक जाता था। चार कोस चौड़ाई और उसकी लंबाई हिमालय की पूरी तलहटी में थी। आज के खर्चीले, अव्यावहारिक तटबंधों के बदले यह विशाल वन-बंध बाढ़ लाने वाली नदियों को छानने का काम करता था। तब भी बाढ़ आती रही होगी, लेकिन उसकी मारक क्षमता ऐसी नहीं होगी।

ढाई हजार साल पहले के एक संवाद में बाढ़ का कुछ वर्णन मिलता है। संवाद भगवान बुद्ध और एक ग्वाले के बीच है। ग्वाले के घर में किसी दिन भगवान बुद्ध पहुंचे हैं। काली घटाएं छाई हुई हैं। ग्वाला बुद्ध

से कह रहा है कि उसने अपना छप्पर कस लिया है, गाय को मजबूती से खूंटे में बांध दिया है, फसल काट ली है और नाव बांध ली है। अब बाढ़ का कोई डर नहीं बचा है। आराम से चाहे जितना पानी बरसे। नदी देवी दर्शन देकर चली जाएगी। इसके बाद भगवान बुद्ध ग्वाले से कह रहे हैं कि मैंने तृष्णा की नावों को खोल दिया है। अब मुझे बाढ़ का कोई डर नहीं है। युगपुरुष साधारण ग्वाले की झोपड़ी में नदी किनारे रात बिताएंगे। उस नदी के किनारे, जिसमें रात को कभी भी बाढ़ आ जाएगी! पर दोनों निश्चित हैं। क्या आज ऐसा संवाद बाढ़ से ठीक पहले हो पाएगा?

ये सारी चीजें हमें बताती हैं कि लोग इस पानी से, इस बाढ़ से खेलना जानते थे। यहां का समाज इस बाढ़ में तैरना जानता था। इस बाढ़ में तरना भी जानता था। इस पूरे इलाके में हृद और चौरा या चौर शब्द बड़े तालाबों के लिए हैं। चौर में बाढ़ का अतिरिक्त पानी रोक लिया जाता था। इस इलाके में पुराने और बड़े तालाबों का वर्णन खूब मिलता है। दरभंगा का एक तालाब इतना बड़ा था कि उसका वर्णन करने वाले उसे अतिशयोक्ति तक ले गए। उसे बनाने वाले लोगों ने अगस्त्य मुनि तक को चुनौती दी कि तुमने समुद्र का पानी पीकर उसे सुखा दिया था, अब हमारे इस तालाब को पीकर सुखा दो तब जानें। वैसे समुद्र जितना बड़ा कुछ भी न होगा, यह वहां के लोगों को भी पता था। पर यह एक खेल है कि हम इतना बड़ा तालाब बनाना जानते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी तक वहां के बड़े-बड़े तालाबों के बड़े-बड़े किस्से चलते थे। परिहारपुर, भरवाहा और आलापुर आदि क्षेत्रों में दो-तीन मील लंबे-चौड़े तालाब थे। धीरे-धीरे बाद के नियोजकों, राजनेताओं, अधिकारियों के मन में यह आया कि इतनी जलराशि से भरे बड़े-बड़े तालाब बेकार की जगह घेरते हैं – इनका पानी सुखा कर जमीन लोगों को खेती के लिए उपलब्ध करा दें। इस तरह हमने दो-चार खेत जरूर बढ़ा लिए, लेकिन दूसरी तरफ शायद सौ-दो-सौ खेत हमने बाढ़ को भेंट चढ़ा दिए। अब यहां पुराने खेत तो डूबते ही हैं, नए भी डूबते हैं। खेत ही अकेले नहीं खलियान, घर, बस्ती सब बाढ़ में समा जाते हैं।

आज अंग्रेजी में रेन वॉटर हारवेस्टिंग शब्द है। इस तरह का पूरा ढांचा उत्तर बिहार के लोगों ने बनाया था – वह 'फ्लड वॉटर हारवेस्टिंग सिस्टम' था। उसी से उन्होंने यह खेल खेला था। तब भी बाढ़ आती थी, लेकिन वे बाढ़ की मार को कम-से-कम करना जानते थे। तालाब का एक विशेषण यहां मिलता है - नदिया ताल। यानी वह वर्षा के पानी से नहीं, बल्कि नदी के पानी से भरता था। पूरे देश में वर्षा के पानी से भरने वाले तालाब मिलेंगे। लेकिन यहां हिमालय से उतरने वाली नदियां इतना अधिक पानी लेकर आती हैं कि नदी से भरने वाला तालाब बनाना ज्यादा व्यावहारिक होता था। नदी का पानी धीरे-धीरे कहीं-न-कहीं रोकते-रोकते उसकी मारक क्षमता को उपकार में बदलते-बदलते आगे गंगा में मिलाया जाता था। ऐसे भूगोलविद समझदार समाज के आज टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। आज के नए लोग मानते हैं कि यह समाज अनपढ़ है, पिछड़ा है। नए लोग ऐसे दंभी हैं।

छोटे से लेकर बड़े बांध बड़े-बड़े तटबंध इस इलाके में बनाए गए हैं, बगैर इन नदियों का स्वभाव समझे। नदियों की धारा इधर से उधर न भटके-यह मान कर हमने एक नए भटकाव के विकास की योजना अपनाई है। उसको तटबंध कहते हैं। ये बांग्लादेश में भी बने हैं और इनकी लंबाई सैकड़ों मील तक जाती है। उसके बाद आज पता चलता है कि इनसे बाढ़ रुकने के बजाय बढ़ी है, नुकसान ही ज्यादा हुआ है। अभी तो कहीं-कहीं ये एकमात्र उपकार यह करते हैं कि एक बड़े इलाके की आबादी जब डूब से प्रभावित होती है, बाढ़ से प्रभावित होती है तो लोग इन तटबंधों पर ही शरण लेने आ जाते हैं।

उत्तर बिहार से निकलने वाली बाढ़ पश्चिम बंगाल होते हुए बांग्लादेश में जाती है। एक मोटा अंदाजा है कि बांग्लादेश में कुल जो जलराशि इकट्ठी होती है, उसका केवल दस प्रतिशत उसे बादलों से मिलता है। नब्बे फीसदी उसे बिहार, नेपाल और दूसरी तरफ से आने वाली नदियों से मिलता है। वहां तीन बड़ी नदियां-गंगा, मेघना और ब्रह्मपुत्र हैं। ये तीनों नदियां नब्बे फीसदी पानी उस देश में लेकर आती हैं और शेष दस फीसदी वर्षा से मिलता है। बांग्लादेश का समाज सदियों से इन नदियों के किनारे,

इनके संगम के किनारे रहना जानता था। वहां नदी अनेक मीलों फैल जाती है। हमारी जैसी नदियां नहीं होतीं कि एक तट से दूसरा तट दिखाई दे। वहां की नदियां क्षितिज तक चली जाती हैं। उन नदियों के किनारे भी वह न सिर्फ बाढ़ से खेलना जानता था, बल्कि उसे अपने लिए उपकारी भी बनाना जानता था। इसी में से अपनी अच्छी फसल निकालता था, आगे का जीवन चलाता था और इसीलिए सोनार बांग्ला कहलाता था।

लेकिन धीरे-धीरे चार कोसी झाड़ी गई। हद और चौर चले गए। कम हिस्से में अच्छी खेती करते थे, उसको लालच में थोड़े बड़े हिस्से में फैला कर देखने की कोशिश की। और हम अब बाढ़ में डूब जाते हैं। बस्तियां कहां बनेंगी, कहां नहीं बनेंगी, इसके लिए बहुत अनुशासन होता था। चौर के क्षेत्र में केवल खेती होगी, बस्ती नहीं बसेगी – ऐसे नियम टूट चुके हैं तो फिर बाढ़ भी नियम तोड़ने लगी है। उसे भी धीरे-धीरे भूल कर चाहे आबादी का दबाव कहिए या अन्य अनियंत्रित विकास के कारण – अब हम नदियों के बाढ़ के रास्ते में अपना सामान रखने लगे हैं, अपने घर बनाने लगे हैं। इसलिए नदियों का दोष नहीं है। अगर हमारी पहली मंजिल तक पानी भरता है तो इसका एक बड़ा कारण नदी के रास्ते में विकास करना है।

बाढ़ राहत में खाना बांटने में, खाने के पैकेट गिराने में हेलीकॉप्टरों का जो इस्तेमाल किया गया, उसमें चौबीस करोड़ रुपए का खर्च आया था। शायद इस लागत से सिर्फ दो करोड़ रुपए की रोटी-सब्जी, पुरी बांटी गई थी। ज्यादा अच्छा होता कि इस इलाके में चौबीस करोड़ के हेलीकॉप्टर के बदले हम कम-से-कम बीस हजार नावें तैयार रखते और मछुआरे, नाविकों, मल्लाहों को सम्मान के साथ इस काम में लगाते। यह नदियों की गोदी में पला-बढ़ा समाज है। इसे बाढ़ भयानक नहीं दिखती। अपने घर की, परिवार की सदस्य की तरह दिखती है

एक और बहुत बड़ी चीज पिछले दो-एक सौ साल में हुई है। वह है - तटबंध और बांध। छोटे से लेकर बड़े बांध बड़े-बड़े तटबंध इस इलाके में बनाए गए हैं, बगैर इन नदियों का स्वभाव समझे। नदियों की धारा इधर से उधर न भटके – यह मान कर हमने एक नए

भटकाव के विकास की योजना अपनाई है। उसको तटबंध कहते हैं। ये बांग्लादेश में भी बने हैं और इनकी लंबाई सैकड़ों मील तक जाती है। आज पता चलता है कि इनसे बाढ़ रुकने के बजाय बढ़ी है, नुकसान ही ज्यादा हुआ है। अभी तो कहीं-कहीं ये एकमात्र उपकार यह करते हैं कि एक बड़े इलाके की आबादी जब डूब से प्रभावित होती है, बाढ़ से प्रभावित होती है तो लोग इन तटबंधों पर ही शरण लेने आ जाते हैं। जो बाढ़ से बचाने वाली योजना थी वह केवल शरणस्थली में बदल गई है। इन सब चीजों के बारे में सोचना चाहिए। बहुत पहले से लोग कह रहे हैं कि तटबंध व्यावहारिक नहीं हैं। लेकिन हमने देखा है कि पिछले सौ डेढ़ सौ साल में हम लोगों ने तटबंधों के सिवाय और किसी चीज़ में पैसा नहीं लगाया है, ध्यान नहीं लगाया है।

बाढ़ आने वाले वर्षों में भी आएगी। यह अतिथि नहीं है। इसकी तिथियां तय हैं और हमारा समाज इससे खेलना जानता था। लेकिन अब हम जैसे-जैसे ज्यादा विकसित होते जा रहे हैं, इसकी तिथियां और इसका स्वभाव भूल रहे हैं। इस साल कहा जाता है कि बाढ़ राहत में खाना बांटने में, खाने के पैकेट गिराने में हेलीकॉप्टरों का जो इस्तेमाल किया गया, उसमें चौबीस करोड़ रुपए का खर्च आया था। शयद इस लागत से सिर्फ दो करोड़ रुपए की रोटी-सब्जी, पुरी बांटी गई थी। ज्यादा अच्छा होता कि इस इलाके में चौबीस करोड़ के हेलीकॉप्टर के बदले हम कम-से-कम बीस हजार नावें तैयार रखते और मछुआरे, नाविकों, मल्लाहों को सम्मान के साथ इस काम में लगाते। यह नदियों की गोदी में पला-बढ़ा समाज है। इसे बाढ़ भयानक नहीं दिखती। अपने घर की, परिवार की सदस्य की तरह दिखती है- उसके हाथ में हमने बीस हजार नावें छोड़ी होतीं।

इस साल नहीं छोड़ी गईं तो अगले साल इस तरह की योजना बन सकती है। नावें तैयार रखी जाएं – उनके नाविक तैयार हों, उनका रजिस्टर तैयार हो, जो वहां के जिलाधिकारी या इलाके की किसी प्रमुख संस्था या संगठन के पास हो, उसमें किसी राहत की सामग्री कहां-कहां से रखी जाएगी, यह सब तय हो। और हरेक नाव को निश्चित गांवों की संख्या दी जाए। डूब के प्रभाव को देखते हुए, पुराने अनुभव को देखते

हुए, उनको सबसे पहले कहां-कहां अनाज या बना-बनाया खाना पहुंचाना है – इसकी तैयारी हो। तब हम पाएंगे कि चौबीस करोड़ के हेलीकॉप्टर के बदले शायद यह काम एक या दो करोड़ में कर सकेंगे और इस राशि की एक-एक पाई उन लोगों तक जाएगी जिन तक बाढ़ के दिनों में उसे जाना चाहिए।

बाढ़ आज से नहीं आ रही है। अगर आप बहुत पहले का साहित्य न भी देखें तो देश के पहले राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू की आत्मकथा में देखेंगे कि उसमें छपरा की भयानक बाढ़ का उल्लेख मिलेगा। उस समय कहा जाता है कि एक ही घंटे में छत्तीस इंच वर्षा हुई थी और पूरा छपरा जिला पानी में डूब गया था। तब भी राहत का काम हुआ और तब पार्टी के कार्यकर्ताओं ने सरकार से आगे बढ़ कर काम किया था। उस समय भी आरोप लगे थे कि प्रशासन ने इसमें कोई खास मदद नहीं दी। आज भी ऐसे आरोप लगते हैं, ऐसी ही बाढ़ आती है। तो चित्र बदलेगा नहीं। बड़े नेताओं की आत्मकथाओं में इसी तरह की लाइनें लिखी जाएंगी और अखबारों में भी इसी तरह की चीजें छपेंगी। लेकिन हमें कुछ विशेष करके दिखाना है तो हम लोगों को नेपाल, बिहार, बंगाल और बांग्लादेश – सभी को मिल कर बात करनी होगी। पुरानी स्मृतियों में बाढ़ से निपटने के क्या तरीके थे, उनका फिर से आदान-प्रदान करना होगा। उन्हें समझना होगा और उन्हें नई व्यवस्था में हम किस तरह से ज्यों-का-ज्यों या कुछ सुधार कर अपना सकते हैं, इस पर ध्यान देना होगा।

जब शुरू-शुरू में अंग्रेजों ने इस इलाकों में नहरों का, पानी का काम किया, तटबंधों का काम किया तब भी उनके बीच में एक-दो ऐसे सहृदय समझदार और यहां की मिट्टी को जानने-समझने वाले अधिकारी थे, जिन्होंने ऐसा माना था कि जो कुछ किया गया है, उससे यह इलाका सुधरने के बदले और अधिक बिगड़ा है। इस तरह की चीजें हमारे पुराने दस्तावेजों में हैं। सन् 1853 में भारत में ही एक नहर, नदी के किनारे लगे एक तंबू में जन्में सर विलियम विलकॉक्स नामक एक अंग्रेज इंजीनियर ने 77 वर्ष की उम्र में सन् 1930 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रांगण में तीन भाषण इसी विषय पर दिए थे। इन्होंने मिस्र जैसे रेगिस्तान में भी

पानी का काम किया था और बिहार, बंगाल जैसे विशाल नदी प्रदेश में भी। सर विलियम तबसे कहते आ रहे हैं कि विकास के नाम पर इन हिस्सों में जो कुछ भी किया गया है, उसमें बाढ़ और बढ़ी है, घटी नहीं है।

इसी तरह बंगाल में मुख्य इंजीनियर रहे श्री एस. सी. मजुमदार ने भी बंगाल की नदियों पर खूब काम दिया था। उन्होंने भी बार-बार यही कहा था कि इन नदियों को समझो। फिर आजादी के बाद इस क्षेत्र में जब दामोदर नदी पर बांध बनाया जा रहा था तो उसी विभाग में काम कर रहे इंजीनियर श्री कपिल भट्टाचार्य ने भी इन्हीं बातों को लगभग भविष्यवाणी की तरह देश के सामने रखा था। आज भी इन बातों को श्री दिनेश कुमार मिश्र जैसे इंजीनियर शासन, समाज के सामने रख रहे हैं। इस साल बिहार की बाढ़ ने एक बार फिर जोर से कहा है कि इन बातों को कब समझोगे। नहीं तो उत्तर बिहार की बाढ़ का प्रश्न ज्यों-का-त्यों बना रहेगा। हम उसका उत्तर नहीं खोज पाएंगे। कब बूझोगे। तभी कोई रास्ता निकलेगा।

आलेखः अनुपम मिश्र, पर्यावरण कक्ष, गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली 110002 □ आवरणः दिलीप चिंचालकर □ प्रकाशकः युवा संवाद प्रकाशन, 167 ए/जी. एच-2, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063 □ फोनः 011-25272799 □ ई-मेल ysamvad@gamil.com □ पहला संस्करणः 2000 प्रतियां, मई 2008 □ दूसरा संस्करण 2000 प्रतियां अक्तूबर 2008 □ सहयोग राशिः दस रुपए □ यह लेख सन् 2004 में जनसत्ता में छपा था। फिर पेंगुइन बुक्स द्वारा प्रकाशित 'साफ माथे का समाज' में सन् 2005 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद यह कुछ और पत्र-पत्रिकाओं में छपा और अब 2008 अगस्त की बाढ़ के बाद यह फिर से लोगों तक कई तरीकों से पहुंच रहा है।